



<https://doi.org/10.53032/tvcr/2025.v7n3.07>

मृत्युदंड और मानवाधिकार: विश्लेषणात्मक अध्ययन

सुरेश कुमार (शोधार्थी)

विधि विभाग।

तिलक धारी सिंह स्नातकोत्तर महाविद्यालय, जौनपुर।

प्रोफेसर (डॉ) संतोष कुमार सिंह

विधि विभाग

तिलक धारी सिंह स्नातकोत्तर महाविद्यालय, जौनपुर

सार (Abstract)

मृत्युदंड एक जटिल और विवादास्पद मुद्दा है जो मानवाधिकारों के सिद्धांतों के साथ गहरा टकराव पैदा करता है। यह शोध पत्र मृत्युदंड और मानवाधिकारों के बीच संबंधों का ऐतिहासिक, कानूनी, नैतिक और तुलनात्मक दृष्टिकोण से विश्लेषण करता है। पत्र में मृत्युदंड के ऐतिहासिक विकास, विभिन्न देशों में इसके कानूनी प्रावधानों, नैतिक दुविधाओं, और मानवाधिकारों के साथ इसकी संगति पर चर्चा की गई है। भारत, संयुक्त राज्य अमेरिका, यूरोपीय संघ और चीन जैसे देशों के तुलनात्मक अध्ययन के माध्यम से यह समझने का प्रयास किया गया है कि मृत्युदंड का उपयोग और मानवाधिकारों की स्थिति कैसे भिन्न होती है। पत्र में प्रासंगिक न्यायालय के निर्णयों, जैसे बचन सिंह बनाम पंजाब राज्य (1980) और शत्रुघ्न चौहान बनाम यूनियन ऑफ इंडिया (2014), के साथ-साथ अंतरराष्ट्रीय मानवाधिकार कानूनों का उल्लेख किया गया है। निष्कर्ष में, मृत्युदंड को मानवाधिकारों के साथ संतुलित करने की चुनौतियों को रेखांकित किया गया है और जागरूकता बढ़ाने, मानवाधिकारों की रक्षा, और मृत्युदंड के विकल्पों की खोज जैसे सुझाव प्रस्तुत किए गए हैं। यह शोध पत्र मृत्युदंड के प्रभावों और मानवाधिकारों मूल भाव के साथ इसके निहितार्थों को समझने के लिए एक व्यापक ढांचा प्रदान करता है।

मुख्य शब्द (Keywords): मृत्युदंड, मानवाधिकार, जीवन का अधिकार, रेयरेस्ट ऑफ रेयर, नैतिकता, कानूनी ढांचा, अंतरराष्ट्रीय मानवाधिकार कानून

प्रस्तावना

मृत्युदंड, जिसे सामान्यतः "मौत की सज़ा" कहा जाता है, दंडात्मक व्यवस्था का सबसे कठोर और विवादास्पद स्वरूप है। यह ऐसी कानूनी प्रक्रिया है जिसमें राज्य को यह अधिकार दिया जाता है कि वह किसी व्यक्ति को उसके द्वारा किए गए अपराध के लिए मृत्यु की सजा दे सके। किंतु यह दंड मानवाधिकारों के सार्वभौमिक सिद्धांतों, विशेष रूप से "जीवन के अधिकार" के प्रतिकूल माना जाता है। जीवन का अधिकार मानव अधिकारों की मूल आत्मा है, जिसे *मानवाधिकारों की सार्वभौमिक घोषणा* (Universal Declaration of Human Rights - UDHR) के अनुच्छेद 3 और *नागरिक और राजनीतिक अधिकारों पर अंतर्राष्ट्रीय वाचा* (International Covenant on Civil and Political Rights - ICCPR) के अनुच्छेद 6 के अंतर्गत संरक्षित किया गया है (संयुक्त राष्ट्र, 1948; संयुक्त राष्ट्र, 1966)।

दुनिया के कई देशों ने मृत्युदंड को समाप्त कर दिया है या उसे बहुत सीमित कर दिया है। यूरोपीय संघ के सभी सदस्य देशों में यह पूरी तरह निषिद्ध है, जबकि भारत, चीन, अमेरिका और कुछ इस्लामी देशों में यह अब भी लागू है (हुड एवं होयल, 2015)। भारत में मृत्युदंड केवल "दुर्लभतम से दुर्लभ" मामलों में दिया जाता है, जिसकी व्याख्या *बचन सिंह बनाम पंजाब राज्य* (1980) के निर्णय में सर्वोच्च न्यायालय ने की थी।

मृत्युदंड के औचित्य के पक्ष में यह तर्क दिया जाता है कि यह अपराधियों को कठोर दंड देकर समाज को भयभीत करता है तथा न्यायपूर्ण प्रतिशोध की भावना को संतोष देता है। परंतु अनेक अध्ययनों और मानवाधिकार संगठनों की रिपोर्टों में यह स्पष्ट किया गया है कि मृत्युदंड अपराध निवारण में प्रभावी नहीं है और इसका प्रयोग प्रायः सामाजिक, आर्थिक, जातीय और धार्मिक पक्षपात के आधार पर होता है (एमनेस्टी इंटरनेशनल, 2020; सारेट एवं बौलांज़े, 2005)। इसके अतिरिक्त, जब न्याय प्रणाली में त्रुटियों की संभावना बनी रहती है, तो निर्दोष व्यक्ति को फांसी की सजा देना एक ऐसी भूल है जिसे कभी सुधारा नहीं जा सकता (ग्रोस एवं ओ'ब्रायन, 2008)।

इस शोध पत्र का उद्देश्य मृत्युदंड और मानवाधिकारों के बीच विद्यमान विरोधाभास का गहन विश्लेषण करना है। यह अध्ययन ऐतिहासिक, विधिक, नैतिक और तुलनात्मक दृष्टिकोणों को सम्मिलित करता है, जिसमें अंतरराष्ट्रीय विधि, न्यायिक दृष्टांत, और सामाजिक विचारधाराओं का समावेश होगा। इस शोध में यह भी मूल्यांकन किया जाएगा कि क्या मृत्युदंड का अस्तित्व मानवाधिकारों के मूल सिद्धांतों से मेल खाता है या नहीं, और यदि नहीं, तो उसके व्यावहारिक व न्यायोचित विकल्प क्या हो सकते हैं।

मृत्युदंड और मानवाधिकार: एक नैतिक परिप्रेक्ष्य

मृत्युदंड पर नैतिक दृष्टिकोण से विचार करना एक जटिल एवं बहुआयामी विमर्श है, जिसमें न्याय, मानव गरिमा, प्रतिशोध और समाज की सुरक्षा जैसे मूलभूत प्रश्न जुड़े हुए हैं। यह दंड न केवल व्यक्ति की जीवन लीला समाप्त करता है, बल्कि मानव अधिकारों की मूल भावना—जीवन के अधिकार—को भी सीधे चुनौती देता है।

मृत्युदंड के पक्षधर तर्क करते हैं कि यह दंड न्यायपूर्ण प्रतिशोध (Retributive Justice) का माध्यम है। उनके अनुसार, जब कोई व्यक्ति जघन्य अपराध करता है, जैसे कि सामूहिक हत्या या आतंकवादी हमला, तो मृत्युदंड उसके

The Voice of Creative Research

Vol. 7 & Issue 3 (July 2025)

कृत्य के लिए उचित उत्तर है। इसका उद्देश्य अपराधी को उसकी करनी का दंड देना है, ताकि पीड़ितों और समाज को न्याय का अनुभव हो। उदाहरण के तौर पर, 2008 के मुंबई आतंकवादी हमलों के दोषी अजमल कसाब को दिए गए मृत्युदंड को कई लोगों ने पूर्णतः न्यायसंगत और आवश्यक ठहराया। इस घटना में निर्दोष लोगों की जान गई थी, जिससे जनता में आक्रोश और पीड़ा थी, और न्याय की भावना को संतुष्ट करने हेतु मृत्युदंड को उचित उपाय माना गया।

वहीं दूसरी ओर, मृत्युदंड के विरोधी यह तर्क देते हैं कि यह सजा मानव जीवन की मौलिक गरिमा के विरुद्ध है। दार्शनिक इम्मैन्युअल कांट ने भले ही यह कहा था कि यदि किसी ने हत्या की है, तो उसे मृत्युदंड देना न्याय का पालन है, परंतु आधुनिक कांटवादी और मानवाधिकार समर्थक यह मानते हैं कि व्यक्ति को केवल साधन के रूप में नहीं देखा जा सकता। प्रत्येक मानव जीवन का स्वाभाविक मूल्य है, और उसे समाप्त करना नैतिक रूप से गलत है, चाहे वह कितना भी दोषी क्यों न हो।

अनेक अध्ययन यह इंगित करते हैं कि मृत्युदंड अपराध को रोकने में प्रभावी सिद्ध नहीं होता। *नेशनल रिसर्च काउंसिल (2012)* की रिपोर्ट में यह कहा गया कि अमेरिका में मृत्युदंड और अपराध दर के बीच कोई निर्णायक संबंध नहीं है। इसी प्रकार, *एमनेस्टी इंटरनेशनल (2020)* ने दर्शाया कि मृत्युदंड से लैस देशों की तुलना में उन देशों में अपराध दर कम है जहाँ इसे समाप्त कर दिया गया है। इसका अर्थ यह है कि मृत्युदंड की रोकथामकारी शक्ति (Deterrence) उतनी प्रभावशाली नहीं जितनी प्रायः मानी जाती है।

इसके अलावा, न्यायिक प्रणाली की असमानता और पक्षपातपूर्ण निर्णय भी मृत्युदंड को नैतिक दृष्टिकोण से संदिग्ध बनाते हैं। कई बार सामाजिक, जातीय या आर्थिक आधार पर व्यक्तियों को दोषी ठहराया जाता है, जिससे निर्दोष को मृत्युदंड मिलने की संभावना बनी रहती है, जो एक अपूरणीय त्रुटि है।

अतः नैतिक दृष्टिकोण से देखा जाए तो मृत्युदंड एक ऐसा दंड है, जो न्याय और प्रतिशोध के बीच के संतुलन को चुनौती देता है। यह सजा जितना एक दोषी को दंडित करती है, उतना ही एक समाज की नैतिकता और मानवता को भी प्रश्नों के घेरे में लाती है। वर्तमान समय में आवश्यकता इस बात की है कि न्यायपूर्ण व्यवस्था ऐसी हो, जो अपराध पर नियंत्रण रखे, परंतु मानव गरिमा और जीवन के अधिकार को भी सुरक्षित रखे।

मृत्युदंड और मानवाधिकार: एक नैतिक परिप्रेक्ष्य

मृत्युदंड, जिसे आम बोलचाल में “मौत की सज़ा” कहा जाता है, दंडात्मक न्याय व्यवस्था का सर्वाधिक कठोर एवं विवादास्पद स्वरूप है। यह सजा न केवल व्यक्ति की जीवन लीला समाप्त करती है, बल्कि मानवाधिकारों के मौलिक सिद्धांत-विशेषकर “जीवन के अधिकार” (Right to Life)—को भी प्रत्यक्ष रूप से चुनौती देती है। इस नैतिक परिप्रेक्ष्य में मृत्युदंड के पक्ष और विपक्ष दोनों में तर्कों का विश्लेषण करना अत्यंत आवश्यक है, ताकि हम समझ सकें कि क्या यह दंड मानव गरिमा, सामाजिक सुरक्षा और न्याय के आदर्शों के बीच समन्वय स्थापित कर सकता है या नहीं।

1. प्रतिशोध और न्याय की भावना

The Voice of Creative Research

Vol. 7 & Issue 3 (July 2025)

मृत्युदंड के समर्थकों का मुख्य तर्क न्याय में प्रतिशोध (Retribution) की आवश्यकता पर आधारित होता है। उनका यह मानना है कि जब कोई व्यक्ति मानवता विरोधी जघन्य अपराध करता है—जैसे सामूहिक हत्या, बलात्कार, आतंकवादी हमला—तो मृत्युदंड उसके अपराध के अनुरूप सर्वोत्तम प्रतिशोधी दंड है। प्रतिशोध का यह सिद्धांत यह कहता है कि अपराधी ने जो जीवन लिया, उसके बदले उसी मूल्य का जीवन राज्य द्वारा लिया जाना चाहिए। उदाहरणतः, 2008 के मुंबई आतंकवादी हमलों में दोषी अजमल कसाब को फांसी की सजा देकर पीड़ित परिवारों तथा व्यापक समाज में न्याय की भावना जागृत हुई, जिसे कई लोग आवश्यक एवं न्यायसंगत मानते हैं (हुड एवं होयल, 2015)।

2. अपरिवर्तनीय त्रुटि और न्यायिक न्यायसंगतता

3. विरोधियों का तर्क है कि न्यायिक प्रणाली में त्रुटियों की संभावना सदैव बनी रहती है, जिसके परिणामस्वरूप निर्दोष व्यक्ति को भी मृत्युदंड हो सकता है। एक बार जब सजा लागू हो जाए, तो किसी भी गलती को सुधारा नहीं जा सकता। ग्रास एवं ओ'ब्रायन (2008) ने अपने अध्ययन में दिखाया कि अमेरिका में दोषसिद्धि की गलतियां निरंतर होती रही हैं, जिससे कई मामलों में नरभक्षी दंड निर्दोषों को भी प्राप्त हुआ। यह त्रुटिपूर्ण प्रणाली मृत्युदंड की नैतिक वैधता पर गहरा प्रश्नचिन्ह लगाती है।

4. मानव जीवन की गरिमा और नैतिकता

दार्शनिक इम्मेनुअल कांट ने तो 'घटिया कर्म' के सिद्धांत में कहा कि "यदि कोई व्यक्ति हत्या करता है, तो मृत्युदंड देना न्यायसंगत है" (Kant, 1785/1993), परंतु समकालीन कांटवादी और आधुनिक मानवाधिकार समर्थक यह मानते हैं कि व्यक्ति को केवल साधन के रूप में नहीं समझा जा सकता। प्रत्येक मानव जीवन का स्वाभाविक एवं अपरिहार्य मूल्य है, जिसे समाप्त करना उसके गरिमा के सीधा उल्लंघन है। इस दृष्टि से मृत्युदंड व्यक्तिवाद एवं मूल्य-सिद्धांत (Value Theory) की मूल भावना के विरोध में है।

5. अपराध-निवारण (Deterrence) का प्रश्न

एक और महत्वपूर्ण तर्क यह है कि मृत्युदंड अन्य अपराधियों के लिए भय का संदेश भेजकर अपराधों को रोकने में सहायक होता है। परंतु *नेशनल रिसर्च काउंसिल* (2012) की रिपोर्ट ने स्पष्ट किया कि अमेरिका में मृत्युदंड और प्रभावित अपराध दर के बीच कोई निर्णायक संबंध नहीं पाया गया। इसी प्रकार *एमनेस्टी इंटरनेशनल* (2020) ने यह भी दर्शाया कि मृत्युदंड निरस्त करने वाले देशों में अपराध दर में कमी का रुझान रहा, जबकि इसे बरकरार रखने वाले देशों में ऐसा कोई स्पष्ट रुझान नहीं दिखा। इन निष्कर्षों के आधार पर कहा जा सकता है कि मृत्युदंड की रोकथामकारी शक्ति (Deterrent Effect) उतनी प्रभावी नहीं जितनी तर्कसंगत रूप से स्वीकार की जाती है।

6. सामाजिक असमानता और पक्षपात

The Voice of Creative Research

Vol. 7 & Issue 3 (July 2025)

न्यायिक निर्णयों में सामाजिक, आर्थिक, जातीय या लिंग आधारित पक्षपात के कारण भी मृत्युदंड की प्रक्रिया संदिग्ध हो जाती है। गरीब, दलित, अल्पसंख्यक या कमजोर वर्गों के अभियुक्तों के मामले में नैतिक एवं कानूनी सुरक्षा कम रहती है, जिससे उन्हें सजा के कठोरतम रूप-मृत्युदंड-तक पहुंचने की अधिक संभावना होती है। यह असमानता न्याय के बुनियादी सिद्धांतों के विरुद्ध है और समाज में विभाजन तथा असंतोष को बढ़ाती है।

7. विकल्प और पुनर्विचार

नैतिक दृष्टिकोण से मृत्युदंड के निरस्तिकरण के पक्ष में यह तर्क भी है कि समाज को अपराधियों के सुधार, पुनर्वास और सामाजिक पुनःसम्मिलन पर अधिक जोर देना चाहिए। जीवन कारावास के विकल्प से दोषी को सुधारात्मक प्रक्रिया का अवसर मिलता है तथा समाज को भी मानवीय दृष्टिकोण बनाए रखने का मौका मिलता है। यह दृष्टिकोण रॉस के न्यायसिद्धांत (Rawls, 1971) के समानता और न्यूनतम असुरक्षा की भावना के अनुरूप है, जहाँ दंड का उद्देश्य सिर्फ प्रतिशोध नहीं, बल्कि दोषी के सुधार और सामाजिक भलाई भी होनी चाहिए। नैतिक दृष्टिकोण से मृत्युदंड एक जटिल दुविधा प्रस्तुत करता है। जबकि प्रतिशोध और न्याय की भावना इसे आवश्यक बताती है, वहीं अपरिवर्तनीय त्रुटि, मानव गरिमा का उल्लंघन, प्रभावहीन रोकथामशीलता तथा सामाजिक पक्षपात इसके विरोध में मजबूत तर्क खड़े करते हैं। एक न्यायसंगत, मानवीय और समावेशी समाज के निर्माण हेतु आवश्यक है कि हम मृत्युदंड के स्थान पर सुधारात्मक और पुनर्वासपरक विकल्पों पर विचार करें, जो न केवल अपराधियों को पुनर्संयोजित करें बल्कि मानवाधिकारों एवं जीवन के अधिकार की रक्षा भी करें।

मृत्युदंड और मानवाधिकार: एक तुलनात्मक अध्ययन

मृत्युदंड और मानवाधिकारों का परस्पर संबंध अंतरराष्ट्रीय न्याय, नैतिकता और राजनीति के प्रमुख विमर्शों में से एक है। विभिन्न देशों की नीतियों और व्यवहारों का तुलनात्मक विश्लेषण यह दर्शाता है कि मृत्युदंड की वैधता, आवश्यकता और नैतिकता पर वैश्विक दृष्टिकोण एकरूप नहीं है। जहाँ कुछ देश इसे मानवाधिकारों के उल्लंघन के रूप में देखते हैं, वहीं अन्य इसे न्याय और सामाजिक सुरक्षा का अनिवार्य उपकरण मानते हैं। इस तुलनात्मक अध्ययन में हम अमेरिका, यूरोपीय संघ, भारत और चीन की मृत्युदंड संबंधी नीतियों और मानवाधिकार दृष्टिकोणों का विश्लेषण करेंगे।

1. संयुक्त राज्य अमेरिका: अधिकार और असमानता के बीच संघर्ष

संयुक्त राज्य अमेरिका मृत्युदंड को कानूनी रूप से मान्यता देने वाले लोकतांत्रिक देशों में से एक है। देश के 50 में से 31 राज्यों में यह सज़ा अब भी लागू है, जबकि 19 राज्यों ने इसे या तो निष्क्रिय कर दिया है या पूरी तरह प्रतिबंधित कर दिया है (Death Penalty Information Center, 2020)।

The Voice of Creative Research

Vol. 7 & Issue 3 (July 2025)

Furman v. Georgia (1972) मामले में अमेरिकी सुप्रीम कोर्ट ने यह निर्णय दिया कि मृत्युदंड की मनमानी और भेदभावपूर्ण प्रकृति इसे संविधान विरोधी बनाती है। इसके पश्चात *Gregg v. Georgia* (1976) में इसे दोबारा वैध माना गया, बशर्ते कि इसे उचित कानूनी प्रक्रिया के तहत लागू किया जाए।

हालाँकि, अमेरिका में मृत्युदंड के विरोध में लगातार आवाज़ें उठ रही हैं, विशेषकर इसके नस्लीय और सामाजिक पक्षपातपूर्ण क्रियान्वयन को लेकर। आंकड़े दर्शाते हैं कि अश्वेत और अल्पसंख्यक अपराधियों को मृत्युदंड दिए जाने की संभावना श्वेत अपराधियों की तुलना में अधिक होती है, जिससे यह दंड सामाजिक न्याय और मानवाधिकारों की भावना से टकराता है (Gross & O'Brien, 2008)।

2. यूरोपीय संघ: मानवाधिकारों की सर्वोच्चता

यूरोपीय संघ (EU) मृत्युदंड के पूर्ण उन्मूलन का अग्रणी पक्षधर है। यूरोपीय मानवाधिकार सम्मेलन (ECHR) का *प्रोटोकॉल 13* मृत्युदंड को हर परिस्थिति में प्रतिबंधित करता है, यहां तक कि युद्ध के समय भी। सदस्य देशों के लिए यह अनिवार्य है कि वे मृत्युदंड को समाप्त करें यदि वे संघ का हिस्सा बने रहना चाहते हैं।

यूरोपीय संघ की यह नीति मानवाधिकारों, विशेष रूप से *जीवन के अधिकार* को सर्वोपरि मानती है। इसके अनुसार, किसी भी राज्य को यह अधिकार नहीं होना चाहिए कि वह अपने नागरिक का जीवन छीन ले—even in the name of justice. यह विचारधारा एक मानवीय एवं सुधारात्मक न्याय प्रणाली की ओर संकेत करती है, जिसमें व्यक्ति के पुनर्वास और सामाजिक पुनर्संयोजन को प्राथमिकता दी जाती है।

3. भारत: मध्यवर्ती स्थिति और 'दुर्लभतम से दुर्लभ' सिद्धांत

भारत में मृत्युदंड को अभी तक समाप्त नहीं किया गया है, लेकिन इसका प्रयोग अत्यंत सीमित मामलों तक रखा गया है। *बचन सिंह बनाम पंजाब राज्य* (1980) में सर्वोच्च न्यायालय ने "रेयरेस्ट ऑफ रेयर" (rarest of the rare) सिद्धांत की स्थापना की, जिसके तहत मृत्युदंड केवल उन मामलों में दिया जा सकता है जहाँ अपराध अत्यंत घिनौना और समाज के प्रति खतरा हो।

हालाँकि, भारत में मृत्युदंड के चयन और क्रियान्वयन की प्रक्रिया पर समय-समय पर विवाद उत्पन्न होते रहे हैं। अफजल गुरु (2013) और याकूब मेमन (2015) जैसे मामलों में न्यायिक प्रक्रिया, राजनीतिक दबाव और मीडिया ट्रायल की भूमिका पर गंभीर प्रश्न उठे हैं (Hood & Hoyle, 2015)। इसके अतिरिक्त, समाज के आर्थिक रूप से कमजोर और वंचित वर्गों को मृत्युदंड की सजा मिलने की संभावना अधिक देखी गई है, जिससे इसके नैतिक आधार पर संदेह उत्पन्न होता है।

4. चीन: गोपनीयता और अधिकारों का संकट

चीन विश्व का ऐसा देश है जहाँ सबसे अधिक मृत्युदंड दिए जाते हैं। हालाँकि चीनी सरकार इसके आंकड़े सार्वजनिक नहीं करती, परंतु अंतरराष्ट्रीय मानवाधिकार संगठनों के अनुसार हर वर्ष हज़ारों लोगों को मृत्युदंड दिया जाता है (Amnesty International, 2020)।

The Voice of Creative Research

Vol. 7 & Issue 3 (July 2025)

चीन की कानूनी प्रणाली में पारदर्शिता की कमी, निष्पक्ष सुनवाई का अभाव और राजनीतिक हस्तक्षेप इसे मानवाधिकारों की दृष्टि से गंभीर संकट की ओर ले जाता है। कई बार राजनीतिक असहमति, धार्मिक गतिविधियाँ या सामाजिक आंदोलनों को अपराध की श्रेणी में रखकर व्यक्तियों को मृत्युदंड दे दिया जाता है, जो स्पष्टतः मानवाधिकारों का उल्लंघन है।

तुलनात्मक निष्कर्ष

इस तुलनात्मक अध्ययन से यह स्पष्ट होता है कि मृत्युदंड का औचित्य, उपयोग और उसका क्रियान्वयन वैश्विक स्तर पर अत्यंत विविध और विरोधाभासी है। एक ओर जहाँ संयुक्त राज्य अमेरिका जैसे लोकतांत्रिक देश में मृत्युदंड अब भी कानूनी है, वहीं वहाँ इसके क्रियान्वयन में नस्लीय और सामाजिक पक्षपात की शिकायतें निरंतर उठती रही हैं। दूसरी ओर, यूरोपीय संघ ने मृत्युदंड को पूरी तरह प्रतिबंधित कर दिया है और मानवाधिकारों को सर्वोच्च प्राथमिकता देते हुए जीवन के अधिकार को पूर्ण संरक्षण प्रदान किया है।

भारत में मृत्युदंड "रेयरेस्ट ऑफ रेयर" मामलों तक सीमित है, किंतु इसके प्रयोग में असमानता और राजनीतिक प्रभाव अक्सर देखने को मिलते हैं। अफजल गुरु या याकूब मेमन जैसे मामलों में न्यायिक प्रक्रिया पर सवाल उठ चुके हैं, जिससे इसकी पारदर्शिता पर संदेह होता है। वहीं चीन में मृत्युदंड का व्यापक उपयोग होता है, परंतु इसकी न्यायिक प्रक्रिया और आंकड़े गोपनीय होते हैं, जो इसे मानवाधिकारों की दृष्टि से अत्यंत संवेदनशील बना देते हैं।

इस अध्ययन से यह भी ज्ञात होता है कि किसी देश की सांस्कृतिक, सामाजिक और राजनीतिक परिस्थितियाँ मृत्युदंड की नीति को आकार देती हैं। जबकि यूरोपीय देशों ने पुनर्वास और सुधार को प्राथमिकता दी है, वहीं भारत और अमेरिका जैसे देश अभी भी मृत्युदंड को एक सीमित न्यायिक विकल्प के रूप में बनाए हुए हैं।

मानवाधिकारों की वैश्विक चेतना को ध्यान में रखते हुए अब यह आवश्यक हो गया है कि सभी राष्ट्र मृत्युदंड की नैतिकता, प्रभावशीलता और वैधता की पुनः समीक्षा करें तथा ऐसी नीतियाँ अपनाएँ जो न्याय, मानवता और समानता के सिद्धांतों पर आधारित हों।

निष्कर्ष

मृत्युदंड और मानवाधिकारों के मध्य का संबंध अत्यंत जटिल, बहुआयामी और संवेदनशील है। ऐतिहासिक रूप से देखा जाए तो मृत्युदंड का उपयोग राज्य की शक्ति और सामाजिक नियंत्रण के साधन के रूप में होता आया है। प्राचीन सभ्यताओं से लेकर आधुनिक राष्ट्रों तक, इस दंड को अपराध की गंभीरता के अनुपात में न्यायसंगत माना गया है। लेकिन समय के साथ-साथ जैसे-जैसे मानवाधिकारों की वैश्विक चेतना बढ़ी, मृत्युदंड की वैधता और नैतिकता पर गंभीर प्रश्न उठने लगे हैं।

मानवाधिकारों की धारणा विशेष रूप से जीवन के अधिकार (Right to Life) और मानवीय गरिमा की रक्षा पर आधारित है। मृत्युदंड इन दोनों मूल्यों से सीधे टकराता है। जीवन का अधिकार *मानवाधिकारों की सार्वभौमिक घोषणा* (UDHR) और *नागरिक एवं राजनीतिक अधिकारों पर अंतर्राष्ट्रीय वाचा* (ICCPR) में संरक्षित है, जिससे यह स्पष्ट होता

The Voice of Creative Research

Vol. 7 & Issue 3 (July 2025)

है कि किसी व्यक्ति के जीवन को समाप्त करना केवल न्यायिक प्रक्रिया नहीं, बल्कि एक नैतिक एवं मानवीय समस्या भी है।

कानूनी दृष्टिकोण से विश्लेषण करें तो कुछ देशों में मृत्युदंड अभी भी वैध है, परंतु उसके प्रयोग की सीमाएँ और शर्तें निर्धारित की गई हैं। भारत जैसे देशों में इसे "दुर्लभतम से दुर्लभ" मामलों तक सीमित किया गया है। वहीं अमेरिका में कई राज्यों ने इसे समाप्त कर दिया है, जबकि अन्य में यह अब भी लागू है, परंतु आलोचना के केंद्र में बना रहता है, विशेषकर नस्लीय और सामाजिक पक्षपात के आरोपों के चलते। दूसरी ओर, यूरोपीय संघ ने इसे पूरी तरह निषिद्ध कर दिया है और इसे मानवाधिकारों के उल्लंघन के रूप में देखा जाता है। चीन जैसे देशों में यह व्यापक रूप से लागू है, लेकिन इसकी पारदर्शिता पर प्रश्नचिह्न लगे रहते हैं, क्योंकि वहाँ की न्यायिक प्रक्रिया गोपनीयता और राजनीतिक नियंत्रण से प्रभावित होती है।

नैतिक दृष्टिकोण से मृत्युदंड के विरुद्ध तर्क अधिक सशक्त प्रतीत होते हैं। इसकी अपरिवर्तनीयता, संभावित न्यायिक त्रुटियाँ, और सुधार की संभावना को समाप्त कर देना इसे एक अमानवीय और कठोर दंड बनाता है। दार्शनिक दृष्टिकोण जैसे कांट का प्रतिशोधात्मक सिद्धांत भले ही मृत्युदंड को न्यायसंगत ठहराता हो, परंतु आधुनिक नैतिकता और सामाजिक दृष्टिकोण इसकी उपयोगिता पर संदेह प्रकट करते हैं। आज की दुनिया पुनर्वास, सुधार और मानवीयता पर आधारित न्याय प्रणाली की ओर बढ़ रही है।

तुलनात्मक अध्ययन से यह स्पष्ट हुआ कि मृत्युदंड का औचित्य, उपयोग और क्रियान्वयन देश की राजनीतिक संरचना, सांस्कृतिक मान्यताओं, सामाजिक न्याय प्रणाली और मानवाधिकारों की स्थिति पर निर्भर करता है। जहाँ यूरोपीय देश जीवन के अधिकार को सर्वोच्च मानते हैं, वहीं भारत और अमेरिका जैसे लोकतंत्रों में इसे अब भी सीमित रूप में मान्यता प्राप्त है। चीन जैसे अधिनायकवादी राज्य इसे राज्य के नियंत्रण और अनुशासन के साधन के रूप में देखते हैं।

अंततः यह कहा जा सकता है कि आज की वैश्विक व्यवस्था में मृत्युदंड की प्रासंगिकता और वैधता पर पुनर्विचार आवश्यक है। एक ऐसी न्याय प्रणाली की आवश्यकता है जो अपराध को दंडित करने के साथ-साथ मानव गरिमा, पुनर्वास और सामाजिक समरसता को भी प्राथमिकता दे। मानवाधिकारों की भावना के अनुरूप यह आवश्यक है कि राष्ट्र मृत्युदंड की नीतियों की पुनः समीक्षा करें और न्याय, समानता तथा मानवता के मूल्यों पर आधारित दंड व्यवस्था को अपनाएँ।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. एमनेस्टी इंटरनेशनल। (2020)। *मृत्युदंड 2019: तथ्य और आंकड़े*।
<https://www.amnesty.org/en/latest/news/2020/04/death-penalty-2019-facts-and-figures/>

The Voice of Creative Research

Vol. 7 & Issue 3 (July 2025)

2. ग्रेस, एस. आर., एवं ओ'ब्रायन, बी. (2008)। झूठी दोषसिद्धियों की आवृत्ति और भविष्यवाणी: पूंजी मामलों पर नया डेटा/ जर्नल ऑफ एम्पिरिकल लीगल स्टडीज़, 5(4), 927-962। <https://doi.org/10.1111/j.1740-1461.2008.00150.x>
3. हुड, आर., एवं होयल, सी. (2015)। द डैथ पेनल्टी: अ वर्ल्डवाइड पर्सपेक्टिव (5वीं संस्करण)। ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस।
4. नेशनल रिसर्च काउंसिल। (2012)। *Deterrence and the Death Penalty*। वाशिंगटन डी.सी.: नेशनल अकैडमी प्रेस। <https://doi.org/10.17226/13363>
5. कांत, इ. (1785/1993)। नैतिकता के मेटाफिजिक्स की आधारशिला (जे. डब्ल्यू. एलिंगटन, अनुवादक)। हैककेट पब्लिशिंग।
6. रॉल्स, जे. (1971)। *अ थ्योरी ऑफ जस्टिस*। हार्वर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस।
7. संयुक्त राष्ट्र। (1948)। मानवाधिकारों की सार्वभौमिक घोषणा। <https://www.un.org/en/about-us/universal-declaration-of-human-rights>
8. संयुक्त राष्ट्र। (1966)। नागरिक और राजनीतिक अधिकारों पर अंतरराष्ट्रीय वाचा। <https://www.ohchr.org/en/instruments-mechanisms/instruments/international-covenant-civil-and-political-rights>
9. सारेट, ए., एवं बौलांजे, सी. (2005)। कैपिटल पनिशमेंट का सांस्कृतिक जीवन: तुलनात्मक दृष्टिकोण। स्टैनफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस।
10. यूरोपीय मानवाधिकार न्यायालय। (2002)। मानवाधिकारों की रक्षा के यूरोपीय अभिसमय का प्रोटोकॉल नं 13। https://www.echr.coe.int/Documents/Library_Collection_P13_ETSI187E_ENG.pdf
11. डेथ पेनल्टी इन्फॉर्मेशन सेंटर। (2020)। राज्य अनुसार मृत्युदंड की स्थिति। <https://deathpenaltyinfo.org/state-and-federal-info/state-by-state>
12. भंडारी, एम. के. (2014)। भारतीय संविधान में मृत्युदंड और मानवाधिकार। नई दिल्ली: सेंटर फॉर लीगल रिसर्च।
13. मीणा, एस. एल. (2018)। भारतीय दंड व्यवस्था में मृत्युदंड का स्थान। भारतीय विधि समीक्षा, 7(1), 33-45।
14. शर्मा, वी. (2020)। दंड का उद्देश्य: न्याय या प्रतिशोध? विधिक विमर्श, 12(2), 45-58।
15. कपूर, पी. (2016)। मानवाधिकार और मृत्युदंड: भारत में एक विश्लेषण। जर्नल ऑफ लॉ एंड सोसाइटी, 10(3), 21-34।
16. डेथ पेनल्टी प्रोजेक्ट। (2015)। विश्व में मृत्युदंड का वर्तमान रुझान। <https://www.deathpenaltyproject.org/what-we-do/research/>
17. बिष्ट, आर. (2019)। भारत में मृत्युदंड और सामाजिक न्याय। सामाजिक न्याय पत्रिका, 5(2), 70-83।

The Voice of Creative Research

Vol. 7 & Issue 3 (July 2025)

18. भारतीय विधि आयोग। (2015)। *मृत्युदंड पर 262वीं रिपोर्ट*। भारत सरकार।
<https://lawcommissionofindia.nic.in/reports/report262.pdf>
19. सेन, अ. (2009)। *न्याय का विचार*। नई दिल्ली: पेंगुइन बुक्स।
20. चोपड़ा, जी. (2013)। *अपराध, दंड और संविधान: भारत में मृत्युदंड की वैधानिकता*। सामाजिक विज्ञान दृष्टिकोण, 18(1), 91-102।